UGC Approved - 45554 **Sangeet Galaxy**
Vol. 7, Issue. 1 (January 2018) pp. 65-74 **ISSN: 2319-9695**

कालिदास की रचनाओं में चतुर्विध वाद्य संगीत

कंचन सिंह
शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
Email: rajput.kanchann@gmail.com

संगीत, सृष्टि की रचना के साथ उद्भूत माना गया है। प्रकृति के कण–कण में इसका वास नाद–गति के रूप में विद्यमान है। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य तीनों को परिगणित किया जाता है। संगीत का महात्म्य अश्रुण्ण है। भरतप्रणीत नाट्यशास्त्र नाट्य, संगीत तथा अन्य कलाओं का विश्वकोश है।

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न स कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[1]

(नाट्यशास्त्र ।/117)

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान, ऐसा कोई शिल्प, ऐसी कोई विद्या, कला या योग नहीं जो नाट्यशास्त्र में दृष्टव्य न हो।

महाकवि कालिदास नाट्यशास्त्र से पूर्णतः परिचित थे, जो कि उनके द्वारा प्रयुक्त नाट्यशास्त्रीय शब्दों से अभिव्यक्त होता है। कालिदास की स्थितिकाल ई0 पूर्व प्रथम शताब्दी से गुप्तकाल तक निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र का स्थितिकाल ई0पू0 500 हो जाता है।[2]

आदि काल से मनुष्य किसी न किसी रूप में वाद्यों का प्रयोग करता आया है। सभ्यता, संस्कृति के विकास के साथ मनुष्य द्वारा निर्मित व प्रयुक्त वाद्य भी विकसित होते गये। वाद्यों की उत्पत्ति कब, कहाँ, कैसे हुई अथवा किस वर्ग का वाद्य पहले बना, प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु संगीतमय ध्वनि एवं गति को प्रकट करने वाला उपकरण वाद्य कहलाया, ऐसा कह सकते है। प्रथम वाद्य के रूप में कण्ठ को ईश्वर निर्मित वाद्य की संज्ञा प्राप्त है। प्राचीन संगीत ग्रन्थों में विभिन्न वाद्यों की उत्पत्ति को विभिन्न देवी–देवताओं से जोडकर बताया गया है। तत् वाद्य देवताओं से, सुषिर वाद्य गन्धर्वो से, अवनद्ध (वितत) वाद्य राक्षसों से, तथा घन वाद्य किन्नरों से सम्बन्धित थे। जब कृष्ण ने अवतार लिया तो वे इन चारो वाद्यों को पृथ्वी पर ले आये।[3] धार्मिक मान्यतानुसार आदि देव महादेव शंकर द्वारा डमरू (अवनद्ध), सरस्वती के द्वारा वीणा (ततवाद्य) आदि की उत्पत्ति मानी गई है। वाद्य रूप में प्राचीनतम् वाद्यों में झुनझुना माना जा सकता है, जो आज भी जनजातियों में प्रचलित है।

संगीतात्मक ध्वनि आधारित वाद्य –

संगीतात्मक ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोहज, तथा शरीरज होती है। वीणा आदि वाद्य नखज है, वंशी आदि वायुज है, मृदंग आदि वाद्य चर्मज है, ताल मंजीरा आदि वाद्य लोहज है, तथा कण्ठ ध्वनि शरीरज है। इन पाँच प्रकार की ध्वानियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को 'पंचमहावाद्यानि' कहा गया है। इनमें से एक ईश्वर द्वारा निर्मित है, जो नैसर्गिक है तथा अन्य चार प्रकार के वाद्य मानव विरचित है।

'एकं ईश्वरनिर्मितं नैसर्गिकं अन्यच्चतुर्विधं चेति पंचप्रकाराः महावाद्यानाम्'

कोहल ने उपर्युक्त आधार पर पाँच प्रकार के ही सांगीतिक वाद्य स्वीकार किये हैं।

'कोहलस्य मते ख्यातं पंचधा वाद्यमेव च'[4]

नख के उपयोग से बजाये जाने वाले, फूँक से बजाये जाने वाले तथा हाथ के उपयोग से बजाये जाने वाले वाद्यों में वीणा, वंशी, मृदंग, ताल आदि वाद्यों का प्रयोग अति प्राचीन काल से किया जा रहा है।

चतुर्विध –

'चतुर्विध' शब्द का प्रयोग आचार्य भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' में वाद्यों के वर्गीकरण का प्रथम उल्लेख आतोद्य विधान में चतुर्विध वाद्य के रूप में प्राप्त होता है।

आचार्य भरत का चतुर्विध वाद्य वर्गीकरण –

भरतकृत नाट्यशास्त्र 36 अध्यायों का वृहद ग्रन्थ है, जिसमें 28–34 अध्याय तक संगीत सम्बद्ध विषयों का निरूपण किया गया है। भरत ने वाद्यों को 4 भागों में वर्गीकृत किया हैः– (1) तत् (2) अवनद्ध (3) घन (4) सुषिर

ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।[5]

(नाट्यशास्त्र 28/1)

उपरोक्त चार प्रकार के वाद्यों के लक्षण को स्पष्ट करते हुए आचार्य भरतमुनि लिखते हैं –

तत् तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।[6]

(नाट्यशास्त्र 28/2)

अर्थात् तत, अवनद्ध, घन एवं सुषिर से तात्पर्य है क्रमशः तंत्रीवाद्य, पुष्करवाद्य, तालवाद्य, वंशीवाद्य।

1–तत् वाद्य :– *'तन्यते इति ततम्'* तन का अर्थ है तानना। तन धातु से तत् शब्द की उत्पत्ति हुई है। तारों को तानने के कारण इन्हें तंतु वाद्य भी कहते हैं, इनमें ध्वनि तार को छेड़कर उत्पन्न की जाती है। उदाहरणार्थ– वीणा, विपन्ची वीणा आदि।

2–अवनद्ध वाद्य :– *'अवनह्यते स्म–मुखे चर्मणा बध्यते स्म इति अवनद्धम्'* जिन वाद्यों के मुख चर्म से बंधे (आबद्ध) होते हैं उन्हें अवनद्ध वाद्य कहते हैं। इन वाद्यों के मुख पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता है तथा उस पर ताड़ना करने से ध्वनि उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ– ढोल, मृदंग आदि।

3–घन वाद्य :– ये ठोस धातु के बने वाद्य होते है, इनमें ध्वनि आपसी टकराव या अन्य वस्तु से आघात करने पर उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ– मंजीरा, झांझ, कठताल आदि।

4. सुषिर वाद्यः– *'सुषिः छिद्रमस्यास्ति इति सुषिरम्'।* सुषि का अर्थ है छिद्र, जिन वाद्यों में छिद्र हों वे सुषिर वाद्य की श्रेणी में आते हैं। इन वाद्यों में ध्वनि वायु के घर्षण से उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ–वंशी, शहनाई आदि।

उपरोक्त चार वर्गो में विभाजित वाद्यों में तत व सुषिर को स्वरवाद्य तथा अवनद्ध व घन वाद्य तालवाद्य की श्रेणी में रखते हैं। मनोहर भालचन्द्रराव मराठे जी के अनुसार, ''तत व सुषिर से श्रुति, स्वर, मूर्छना, तान, अलंकार इत्यादि द्वारा गीत बनते हैं। अवनद्ध वाद्य द्वारा गीत में रंजकत्व लाया जाता है तथा घनवाद्य से गीत को लय एवं काल में धारण किया जाता है।''

कालिदास की प्रमुख रचनायें –

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनका रससिक्त वाड्मय युगों–युगों से सहृदयों को आनन्द से पूरित करता रहा है और करता रहेगा। संस्कृत काव्यक्षेत्र में महाकवि कालिदास की

काव्यकला, रसव्यंजना, उपमाएँ एवं मौलिक उद्भावनाशक्ति अन्य सभी संस्कृत कवियों से बहुत आगे है। कालिदास अपूर्व शब्दावली व व्यंजना व्यापार के पण्डित है। कालिदास की रचनाओं में विविध शास्त्र विषयक पाण्डित्य परिलक्षित होता है। व्याकरण, दर्शन, आयुर्वेद, वनस्पतिशास्त्र तथा संगीत आदि ललित कलाओं में कवि परम निष्णात् थे। सुप्रसिद्ध संस्कृत नाटककार एवं कवि तथा सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक कालिदास के साहित्य में संगीत कला विषयक जितने अधिक उल्लेख है, उतने किसी भी अन्य संस्कृत कवि के साहित्य मे नही। संगीत सम्बन्धी उल्लेखों ने कालिदास के साहित्य को एक अपूर्व रमणीयता एवं मधुरता प्रदान की है। ये उल्लेख कवि के संगीत विषयक परम वैदुष्य के सूचक हैं। कालिदास के ग्रन्थों में वाद्य की चतुर्विध विधाओं के तत, वितत, सुषिर इन तीन प्रकार के वाद्यों के प्रचुर उल्लेख प्राप्त होते है।[8]

कालिदास कृत प्रमुख 07 रचनायें संस्कृत जगत में व विश्व भर में प्रसिद्ध है। कालिदास ने काव्यग्रन्थ, नाट्यग्रन्थ, खण्डकाव्य की रचना की है।

(क) काव्यग्रन्थ

(1) कुमारसम्भव महाकाव्य
(2) रघुवंश महाकाव्य

(ख) नाट्यग्रन्थ (रूपक)

(1) मालविकाग्निमित्रम्
(2) विक्रमोर्वशीयम्
(3) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(ग) खण्डकाव्य (गीतिकाव्य)

(1) ऋतुसंहार
(2) मेघदूत

कालिदास की प्रमुख 7 रचनाएँ कालक्रमानुसार[9] इस प्रकार है–

(1) कुमार सम्भव
(2) रघुवंश
(3) मालविकाग्निमित्रम्
(4) विक्रमोर्वशीयम्
(5) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
(6) ऋतुसंहार
(7) मेघदूत

कालिदास की रचनाओं का संक्षिप्त सार अधोलिखित हैः–

1– **कुमारसम्भव–** अर्थात कुमार का जन्म। कुमार से आशय स्कंद या कार्तिकेय से है। इस महाकाव्य में 17 सर्ग मिलते है, परन्तु इनमें से प्रथम आठ सर्ग तक ही कालिदास विरचित माने जाते है। इस महाकाव्य में पार्वती के द्वारा शिव के चित्त का आकर्षण दिखाया गया जो कुमार कार्तिकेय के जन्म का कारण बना।

2– **रघुवंश–** इस महाकाव्य में 19 सर्ग हैं। इसमें राजा दिलीप से आरम्भ करके अग्निवर्ण तक रघुकुल के राजाओं का चरित्र वर्णित है। राजा रघु का चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली है। इन्ही के नाम पर वंश का नाम रघुवंश या रघुकुल पड़ा। दूसरे सर्ग में राजा दिलीप नंदिनी गौ से वंश को आगे ले जाने वाला या वंश का नाम बढ़ाने वाला पुत्र माँगते हैं। अतएव 'रघु' के नाम पर वंश का नाम रघुवंश या रघुकुल पड़ा।

3– **मालविकाग्निमित्रम्–** यह कालिदास रचित सर्वप्रथम नाटक है। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित 05 अंको में विभक्त है। पुष्यमित्र का पुत्र शुंगवंशी अग्निमित्र इसका नायक है। विदर्भ क्षेत्र की राजकुमारी मालविका से उसके प्रेम और अन्त में परिणय की कथा को कवि ने रमणीय नाट्यात्मक विन्यास दिया है।

4– **विक्रमोर्वशीयम्–** मालविकाग्निमित्र की भाँति विक्रमोर्वशीयम् भी कालिदास की दूसरी श्रृंगाराश्रित नाट्य रचना है। यह त्रोटक कोटि का उपरूपक है। इसका कथानक पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रेम–कथा पर आधारित है। इसमें भी 5 अंक है।

5– **अभिज्ञानशाकुन्तलम्–** अभिज्ञानशाकुन्तल केवल कालिदास का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण संस्कृत नाट्क साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति के रूप में समादूत है। इसीलिए कहा गया है–

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'[10]

इसमे 07 अंको में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग तथा पुनर्मिलन का वर्णन किया गया है।

6– **ऋतुसंहार–** कालिदास रचित ऋतुसंहार में 6 सर्ग तथा 144 पद्य है। छहो सर्गो में छः ऋतुओं का वर्णन किया गया है। संस्कृत साहित्य की परम्परा में ऋतुसंहार पहला काव्य है, जो स्वतंत्र रूप से ऋतुवर्णन को विषय बना कर लिखा गया है। ऋतुचक्र के परिवर्तन के साथ भारतीय वसुन्धरा की सुषमा में होने वाले आवंर्तन–विवर्तन का बड़ा ही मनोहारी चित्रण समग्र रूप में पहली बार इस काव्य में प्रस्तुत किया गया।

7– **मेघदूत–** मेघदूत गीतिकाव्य की कथावस्तु कविकल्पित है। कवि ने मर्मस्पर्शी रूप से मेघदूत की कथावस्तु की अवधारणा की है। पूर्वमेघ व उत्तरमेघ दो प्रकरण में मेघदूत की कथा है। मेघदूत में श्लोकों की संख्या 111 है।[11]

कालिदास की रचनाओं में चतुर्विध वाद्य संगीत –

शास्त्रीय तथा अभिजात्य संगीत के अतिरिक्त लौकिक संगीत से सम्बन्धित उल्लेख कालिदास की रचनाओं में प्राप्त होते है। कालिदास के साहित्य में साम तथा गान्धर्व दोनों का समावेश दृष्टव्य होता है। 'संगीत', 'संगीतक' तथा 'राग' शब्द का उल्लेख मिलता है। कालिदास के अनुसार संगीत का अन्तर्भाव 'शिल्प' में है। कालिदास संगीत को 'ललित विज्ञान' मानते है, जिसके लिए मधुर स्वर प्राथमिक आवश्यकता है। कालिदास संगीत तथा नाटक की दृष्टि से आचार्य भरत के अनुगामी रहे है।

कालिदास की रचनाओं में शास्त्रीय व लौकिक दोनों नृत्य प्रकार के साथ–साथ 'चलित' तथा 'प्रेरण' नामक नृत्य प्रचलित था। देवालयों में आराधना के अवसर पर वीरागंनाओं के द्वारा लास्य नृत्य किया जाता था।

राज्याभिषेक, विवाह, पुत्रजन्म आदि मंगल अवसरो पर तूर्यादि मंगल वाद्यों का वादन तथा बन्दीजनों का स्तुति गान होता था। युद्ध के समय तूर्य तथा शंख वादन होता था। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग,मुरज इत्यादि वाद्यों का प्रयोग गीत तथा नृत्य की संगति हेतु किया जाता था, किन्तु नाट्य आयोजनों में पुष्कर वाद्यों का विशेष प्रचार था। कालिदास की रचनाओं मे संगीत के विविध पक्षों के साथ–साथ चतुर्विध वाद्यों का प्रचुर उल्लेख प्राप्त होता है।

1. कालिदास की रचनाओं में 'तत्' वाद्य –

ततवाद्यों में वीणा सर्वप्राचीन एवं सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य रहा है। महाकवि की रचनाओं में सूक्ष्मता के साथ वीणा–वादन के विविध पक्षों का उल्लेख मिलता है। कालिदास ने वीणा के प्रकारों में – वीणा, तन्त्री, वल्लकी, एवं परिवादिनी का वर्णन किया है।

मेघदूत के पद्य में वीणा, तंत्रीवादन –

वीणा वादन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने की दृष्टि से मेघदूत का निम्नलिखित पद सर्वाधिक महत्व रखता है। मेघदूत के दूसरे अध्याय व 26 वें श्लोक में नायक विरही यक्ष अपनी विरहिणी प्रियतमा का वर्णन करते हुए मेघ से कहता है :–

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य।
निक्षिप्य वीणां मद्गोत्रांक विरचित पदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित्।
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।[12]

अर्थात् ओ सौम्य! मेरी प्रियतमा अपनी गोद में या मलिन वसन पर वीणा को रखे हुए अपनी ही मिलाई हुई मूर्च्छना को बार–बार भूलती हुई, ऑसुओं से भीगी हुई तंत्री को यथास्थान मिलाकर मेरे नाम से अंकित गेय पद को गाने की कामना करती होगी। उपरोक्त पद्य में कालिदास ने वीणा, तंत्रीवाद्य की वादन प्रक्रिया पर स्पष्ट प्रकाश डाला है कि वादक या वादिका की वीणा सारिकाहीन है एवं उत्संग (गोद) में वीणा रखकर ही विधान पूर्वक वीणा के तारों को उतार चढ़ा कर मूर्छना की प्राप्ति होती है।

रघुवंश के पद्य में नारद–वीणा के रूप में परिवादिनी –

भमरैः कुसुमानुसारिभिः परिकीर्णा परिवादिनी मुनेः।
ददृशे पवनावलेपजं सृजती बाष्पमिवांजनाविलम्।।[13]

अर्थात् प्रकीर्णित पुष्पों का अनुसरण करने वाले भवरों से घिरी हुई नारद मुनि की वीणा (परिवादिनी) ऐसी देखी गयी मानों वायु के तिरस्कार से उत्पन्न और कज्जल मिले अश्रु बहा रही हो।

ऋतुसंहार के पद्य में वल्लकी वादन –

ऋतुसंहार के प्रथम सर्ग में ग्रीष्म वर्णन प्रसंग के अधोलिखित पद्य में वल्लकी वादन दृष्टव्य है–

सवल्लकीकाकलिगीतनिस्वनैर्विबोध्यते सुप्त इवाद्य मन्मथः।[14]

अर्थात् वल्लकी के साथ मधुर गीत का बोध हो रहा है। वल्लकी भी तत वाद्य की श्रेणी का ही वाद्य है। महाकवि कालिदास ने वीणा के दो रूपों सुतंत्री तथा वितंत्री वीणा का उल्लेख किया है। जब वीणा के तार संगीत के स्वरों में विधिवत मिले होते हैं तब वह वीणा 'सुतंत्री' कहलाती है और जब उसके तार अपने स्थान से हट कर विस्वर हो जाते हैं तब वह वीणा 'वितंत्री' अथवा 'विगततंत्री' कहलाती है।

कालिदास की रचनाओं में 'अवनद्ध' वाद्य –

कालिदास की रचनाओं में वर्णित प्रमुख अवनद्ध वाद्य है– पटह, पुष्कर, मृदंग, मुरज तथा मर्दल, दुन्दुभि, भेरी। आचार्य भरतमुनि द्वारा निर्दिष्ट अवनद्ध वाद्यों में पटह एक प्राचीन वाद्य है, जिसका उल्लेख प्राचीन काल से ही साहित्यिक ग्रन्थों में किया गया है। कालिदास ने पूजा–जन्मोत्सव जैसे मांगलिक कार्यों के अवसर के अतिरिक्त युद्ध प्रयाण के लिए भी पटह वादन का उल्लेख सेना के वीरों को उत्साहित करने के लिए किया है।

कुमारसम्भव के पद्य में पटह वादन (पुत्र जन्मोत्सव) –

'महोत्सवं शंसितुमाहतोऽन्यैदध्वान धीरः पटहः पटीयान्[15]

अर्थात् कार्तिकेय के जन्म अवसर पर भगवान शिव का आदेश प्राप्त कर गणों ने गम्भीर ध्वनि वाले पटह का वादन किया।

कुमारसम्भव के पद्य में पटह वादन (युद्ध प्रयाण) –

'घनै रथानां गुरूचण्डचीत्कृतैस्तिरोहितोऽभूत्पटहस्य निःस्वनः'[16]

अर्थात् बड़े–बड़े मतवाले गजों के अत्यन्त भीषण चिंघाड़, घोड़ों की भयंकर हिनहिनाहट तथा रथों की गम्भीर घरघराहट से पटह की ध्वनि तिरोहित हो गयी।

मेघदूत के पद्य में पुष्कर वादन –

पुष्कर, मृदंग, मुरज तथ मर्दल अतिप्राचीन अवनद्ध वाद्य हैं। प्रारम्भ में सभी अवनद्धवाद्य पुष्कर पद से अभिहित होते थे। मेघदूत में यक्ष अलकापुरी के वर्णन प्रंसग में मेघ से कह रहा है–

'त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु'[17]

अर्थात् (हे मेघ!) तुम्हारे गम्भीर गर्जन के समान वहॉ पुष्कर वादन हो रहा होगा।

रघुवंश के पद्य में मृदंग वादन –

कालिदास के ग्रन्थों में पुष्कर वाद्य के रूप में मृदंग पद पर भी प्राप्त होता है। रघुवंश में राजा अग्निवर्ण के वर्णन में कालिदास लिखते हैं...

'कामिनीसहचरस्य कामिनस्तस्य वेश्मसु मृदगंनादिषु'[18]

अर्थात् सुन्दरियों के साथी कामी उस राजा अग्निवर्ण के उन भवनों में, जिनमें निरन्तर मृदंग बजती रहती थी।

मेघदूत के पद्य में मुरज वादन –

पुष्कर मृदंग के अतिरिक्त 'मुरज' वाद्य का प्रयोग कालिदास ने अपने सांगीतिक प्रसंगों में किया है। मुरज की गम्भीर ध्वनि का प्रतिपादन करते हए मेघदूत में कालिदास लिखते हैं...

'संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्'[19]

अर्थात् वहॉ (अलकापुरी) के प्रसादों में संगीत के लिये मुरज वादन हो रहा तथा मेघ स्निग्ध और गम्भीर गर्जना से युक्त हैं।

ऋतुसंहार के पद्य में मर्दल वादन –

कालिदास ने ऋतुसंहार के द्वितीय सर्ग (वर्षावर्णनपरक) में *'बलाहकाश्चाशनिशब्द मर्दलाः'*[20] अर्थात् मेघों की गर्जन ध्वनि के मर्दल ध्वनि के सदृश होती है, पंक्तियों द्वारा मर्दल वादन का उल्लेख किया है।

कुमारसम्भव के पद्य में दुन्दुभि वादन –

वैदिक साहित्य में उल्लखित प्राचीनतम वाद्यों में वीणा के बाद 'दुन्दुभि' का नाम आता है। कालिदास ने भी विवाह, जन्मोत्सव इत्यादि मांगलिक कार्यों में दुन्दुभि वादन का प्रयोग किया है। दुन्दुभि वादन देवताओं द्वारा किये जाने का उल्लेख साहित्य में उपलब्ध है।

कालिदास ने कुमार कार्तिकेय के जन्मोत्सव प्रसंग में *'गृहोद्भवा दुन्दुभयः प्रणेदुः*[21] अर्थात् सभी घरों में दुन्दुभियॉ बजने लगी, ऐसा उल्लेख किया है।

भगवान श्रीराम के जन्म अवसर पर आनन्दोल्लास में जिन वाद्यों का वादन किया गया, उनका शुभारम्भ देवताओं द्वारा स्वर्ग में विद्यमान दुन्दुभियों द्वारा ही हुआ। कवि नें इस वाद्य की लोकप्रियता व्यन्जित की है।

कुमारसम्भव के पद्य में भेरी वादन –

युद्ध के अवसर पर शत्रुदल के सैनिकों का मनोबल ध्वस्त करने व अपनी सेना को उत्साहित करने के उद्देश्य से भेरी वादन युद्धारम्भ से पूर्व किया जाता था। कालिदास ने कुमार सम्भव में तारकासुर से युद्ध के लिये देवसेना से प्रयाण के अवसर पर भेरी वादन *'गम्भीरभेरीध्वनितैर्भयंकरैमहागुहान्तप्रतिनादमेंदुरैः*[22] अर्थात् बड़ी–बड़ी गुफाओं से प्रतिध्वनित होने के कारण भेरी की ध्वनि अत्यन्त भयंकर एवं गम्भीर है, ऐसा उल्लेख किया है।

कालिदास की रचनाओं में 'सुषिर' वाद्य –

चतुर्विध वाद्य संगीत का तीसरा प्रकार है–सुषिर वाद्य। फूँक द्वारा ध्वनि निकास से सुषिर वाद्य बजाये जाते हैं। कालिदास की रचनाओं में 'तत' 'अनवद्ध' की भॉति सुषिर वाद्यों के दिग्दर्शन होते हैं। कालिदास ने मुख्यतः 3 निम्नलिखित सुषिर वाद्यों का उल्लेख किया है– तूर्य, वंशी, शंख

तूर्य–

तूर्य का प्रयोग कालिदास ने विभिन्न सामाजिक अवसरों पर अपनी रचनाओं में किया है। उन्होंने तूर्य के कई भेद–जैसे मंगल तूर्य, याम तूर्य, युद्ध तूर्य का निरूपण किया है।

रघुवंश के पद्य में तूर्यवादन –

'सुखश्रवा मंगलतूर्यनिःस्वनाः प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम्[23] *(पुत्रजन्मोत्सव)*

अर्थात् पुत्र (रघु) के जन्म लेने पर राजा दिलीप की नगरी में मंगल तूर्य की गम्भीर ध्वनि बजी जिसे सुन कर पुरवासियों को सुख हुआ।

कुमारसम्भव के पद्य में तूर्यवादन –

कालिदास ने कुमारसम्भव के सुरासुर–सैन्य–संग्राम वर्णन में तूर्यवादन का *'नदत्सु तूर्येषु परे तयोषिता*[24] (युद्ध के अवसर पर) अर्थात् युद्धभूमि में तूर्य उच्च स्वर में बज रहे थे, उल्लेख किया है।

वंशी –

वैदिक वांगमय में वेणु या वंशी का सुषिर वाद्यों में प्रमुख स्थान है। वंशी सुषिर वाद्य की परिचायक हैं। भगवान श्रीकृष्ण से वंशी या मुरली का अभिन्न सम्बन्ध सदियों से मान्य हैं।

रघुवंश के पद में वंशी/वेणु वादन –

कालिदास ने वंशीवादन के दृश्य को रघुवंश में द्वितीय सर्ग में अत्यन्त रमणीय विधि से *'सः कीचकैः.... वंशकृतयम्*[25] अर्थात छिद्रों वाले कीचक वायु भरने से बॉसुरी वादन को अंकित किया है। कालिदास ने 'वंशी' के स्थान पर 'वेणु' शब्द का प्रयोग *'वेणुना दशनपीडिताधरा*[26] रघुवंश में राजा अग्निवर्ण की अन्तःपुर प्रभदाओं के वर्णन में वंशीवाद्य का प्रयोग किया है।

शंख –

शंख सुषिर वाद्यों में ऐसा वाद्य है जो समुद्र से पाया जाता है। शंखवादन भी विवाह अवसरों पर, जन्मावसरों पर तथा युद्ध अवसरों पर किये जाते थे। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश व कुमारसम्भव में यत्र तत्र शंखवादन का उल्लेख किया है।

रघुवंश के पद्य में शंखवादन –

राजकुमारी इन्दुमति के स्वयंवर के अवसर पर मंगलसूचक शंख वादन का उल्लेख कालिदास ने इस प्रकार किया है–

'प्रध्मातशंखे परितो दिगन्तांस्तूर्यस्वने मूर्च्छति मंगलार्थे'[27]

अर्थात् उसके (इन्दुमति) प्रस्थान से पूर्व मंगलसूचक शंख तुमुल ध्वनि से बजाये गये तथा उच्च स्वर में तूर्य वादन हुआ। प्रस्तुत पद्य में कवि ने शंख तूर्य दो मंगलसूचक वाद्य का एक साथ प्रयोग कर उनकी ध्वनि सामंजस्य/संवाद को भी व्यक्त किया है।

कुमारसम्भव के पद्य में शंखवादन –

हिमालयपुत्री पार्वती के जन्म पर होने वाली प्रसन्नता को व्यक्त करते हुये कवि ने *'शंखस्वनानन्तर पुष्पवृष्टि'*[28] अर्थात् शंख ध्वनि के पश्चात् देवताओं ने पुष्पवृष्टि की, पंक्तियों द्वारा शंख वादन का उल्लेख किया है।

कालिदास की रचनाओं में 'घन' वाद्य –

वाद्य संगीत का चतुर्थ भेद है–घनवाद्य अथवा तालवाद्य। कालिदास की रचनाओं में तत्, अवनद्ध व सुषिर के सापेक्ष घन वाद्यों के उल्लेख कम हैं। घनवाद्यों की श्रंखला में कालिदास की रचनाओं में 'ताल' एवं 'घण्टा' वाद्य के साथ किंकिणी, नूपुर, कांची नामक वाद्यों के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।

ताल –

मंजीरे के सदृश इस वाद्य का प्रयोग वीणावादन के साथ ताल लेने के लिए एकमात्र उल्लेख मेघदूत के प्रस्तुत पद्य *'तालैः शिञ्जावलय सुभगैर्नर्तितः*[29] अर्थात् प्रियतमा के द्वारा बजती हुई चूड़ियों से मनोहर ताल के रूप में प्राप्त होता है।

घण्टा –

यह एक अतिप्राचीन वाद्य है, जिसका प्रयोग मन्दिरों में किया जाता रहा है। बड़े आकार के घण्टे को 'कल्पतरू' व छोटे आकार को 'घण्टा' कहा जाता था। घण्टा का प्रयोग लय दर्शाने अथवा मात्रा अभिज्ञान के लिए होता था। कालिदास ने कुमारसम्भव के 14वें सर्ग में 'घण्टे' का प्रयोग *'करीन्द्रघण्टाखचण्डचीत्कृताः*[30] अर्थात् हाथियों के गले में घण्टियॉ बज रही थी और वे हाथी भंयकर चिघांड़ रहे थें, पंक्तियों में किया है।

किंकिणी (क्षुद्रघण्टिका) –

कालिदास ने कुमारसम्भव महाकाव्य में भगवान शंकर के पाणिग्रहण प्रस्थान के अवसर पर *'सशब्दचामीकर किंकिणीकः*[31] अर्थात् सुवर्णमयी क्षुद्रघंटिकाओं से शब्दायमान वृषभ (वरवाहन सज्जा) के अंग के रूप में किकिंड़ी का उल्लेख किया है।

नूपुर –

कालिदास की रचना ऋतुसंहार के शरद ऋतु प्रसंग में उल्लिखित नूपुर शब्द को वाद्य की संज्ञा मानते हुए इसकी कर्णप्रिय ध्वनि को पद *'सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या'*[32] अर्थात् हंस–रव का अनुकरण करने वाली नायिका के नूपुरों की सुमधुर ध्वनि श्रोता के चित्त को सकाम बना देती है, द्वारा व्यक्त किया गया है।

कांची (रसना) –

विलासवती रमणियों का कटि पर धारण किया जाने वाला एक प्रिय आभूषण है 'कांची', जिसके मेखला, रशना, करधनी आदि नाम भी हैं। यह कांची स्वर्ण या रजत की बनी होती है, जिसमें मणि जड़े होते हैं या फिर छोटे–छोटे नूपुर लटकते रहते हैं। यह एक लड़ या अनेक लड़ की भी होती हैं। चलते समय इन कांची में मधुर ध्वनि निकलती है। कालिदास ने ऋतुसंहार में कांची का उल्लेख *'क्वणितकनकांची मत्तहंससस्वनेषु*[33] पद के माध्यम से किया है।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है महाकवि कालिदास के साहित्य में अत्यन्त सरस, रणमीय एवं प्रभावशाली ढंग से चतुर्विध वाद्य (तत, अनवद्ध, सुषिर एवं घन) संगीत का विशद वर्णन किया गया है जो सांगीतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय संगीत में प्रचलित वर्तमान वाद्यों की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में कालिदास उल्लिखित वाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि तात्कालिक प्राचीन वाद्य आज आज भी जनमानस के संगीत मे सम्मिलित हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. शर्मा, स्वतंत्र/भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण/भार्गव प्रकाशन, इलाहाबाद/द्वि0सं01995/पृ0–43
2. कुलश्रेष्ठ, सुषमा/कालिदास साहित्य एवं वादन कला/इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली/प्र0सं0/पृ0–19
3. शर्मा, स्वंतन्त्र/पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत/प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली/तृ0सं01996/पृ0–110
4. मिश्र, लालमणि/भारतीय संगीत वाद्य/भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली/चौ0सं02011/पृ0–41
5. शास्त्री बाबूलाल शुक्ल/नाट्यशास्त्र(चतुर्थ भाग)/चौखम्भा सं0सं0 प्रकाशन, वाराणसी/2009/पृ0–03
6. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल/नाट्यशास्त्र(चतुर्थ भाग)/चौखम्भा सं0सं0 प्रकाशन, वाराणसी/2009/पृ0–03
7. सिंह, ठा0 जयदेव/भारतीय संगीत का इतिहास/वि0वि0 प्रकाशन, वाराणसी/द्वि0सं0 2010/पृ0–311
8. परांजपे, शरच्चन्द्र श्रीधर/भारतीय संगीत का इतिहास/चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशन, वाराणसी/प्र0सं0 1969/पृ0–502
9. त्रिपाठी, राधा वल्लभ/संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास/वि0वि0 प्रकाशन, वाराणसी/प्र0सं02001/पृ0–09, 10
10. द्विवेदी, कैलाश नाथ /कालिदास परिशीलन/हंसा प्रकाशन, जयपुर/प्र0सं02004/पृ0–26
11. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र/कालिदास और उनका युग/राका प्रकाशन, इलाहाबाद/प्र0सं01998/पृ0–47
12. बृहस्पति आचार्य/संगीत चिंतामणि/संगीत कार्यालय, हाथरस/द्वि0सं0सं0/नव02017/पृ0–37
13. मिश्र, आचार्य धारादत्त/रघुवंशम्/मोतीलाल बनारस दास, दिल्ली/द्वि0सं01987/पृ0–181
14. कुलश्रेष्ठ, सुषमा/कालिदास साहित्य एवं वादन कला/प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली/तृ0सं01996/पृ0–120
15- Wilson H.H/Kumarsambhavam/Indological Book House, Varansi /1996/Page - 133
16- Wilson H.H/Kumarsmbhavam/Indological Book House, Varansi /1996/Page - 162
17. शास्त्री, आर0बी0/मेघदूतम्/हंसा प्रकाशन, जयपुर/2017/पृ0–41

18. मिश्र आचार्य धारादत्त / रघुवंशम् / मोतीलाल बनारस दास, दिल्ली / द्वि0सं01987 / पृ0–463
19. शास्त्री, आर0बी0 / मेघदूतम् / हंसा प्रकाशन, जयपुर / 2017 / पृ0–33
20. कुलश्रेष्ठ, सुषमा / कालिदास साहित्य एवं वादन कला / प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली / तृ0सं01996 / पृ0–151
21- Wilson H.H/Kumarsambhavam/Indological Book House, Varansi / 1996 / Page - 134
22- Wilson H.H/Kumarsambhavam/Indological Book House, Varansi / 1996 / Page - 161
23. मिश्र आचार्य धारादत्त / रघुवंश महाकाव्य तृतीय सर्ग / मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली / द्वि0सं01987 / पृ0–17
24. कुलश्रेष्ठ, सुषमा / कालिदास साहित्य एवं वादन कला / प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली / तृ0सं01996 / पृ0–166
25. मिश्र आचार्य धारादत्त / रघुवंश महाकाव्य द्वितीय सर्ग / मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली / द्वि0सं01987 / पृ0–14
26. मिश्र आचार्य धारादत्त / रघुवंश महाकाव्य एकोनविंश सर्ग / मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली / द्वि0सं01987 / पृ0–486
27. मिश्र आचार्य धारादत्त / रघुवंश महाकाव्य षष्ठ सर्ग / मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली / द्वि0सं01987 / पृ0–8
28. Wilson H.H/Kumarsambhavam/Indological Book House, Varansi / 1996 / Page – 05
29. शास्त्री, आर0बी0 / मेघदूतम् / मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली / द्वि0सं01987 / पृ0–61
30- Wilson H.H/Kumarsambhavam/Indological Book House, Varansi / 1996 / Page – 15
31- Wilson H.H/Kumarsambhavam/Indological Book House, Varansi / 1996 / Page – 85
32. कुलश्रेष्ठ, सुषमा / कालिदास साहित्य एवं वादनकला / प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली / तृ0सं01996 / पृ0–191
33. कुलश्रेष्ठ, सुषमा / कालिदास साहित्य एवं वादनकला / प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली / तृ0सं01996 / पृ0–195